न्यू नॉर्मल की परिभाषा

हृदय कान्त दीवान

पहले तो इस बात पर विचार करना ज़रूरी है कि 'न्यू नॉर्मल' या नई सामान्य अवस्था के बारे में बात करनी चाहिए भी या नहीं। वैसे तो हमारा यह सोचना उचित हो सकता है कि भले ही *कोविड-19* की स्थिति लम्बे समय से खिंच रही है पर फिर भी अस्थाई ही है और अन्ततः समाप्त हो जाएगी जिसके बाद स्कूल अपनी पहले की स्थिति में वापस आ जाएँगे। पर यह सोच पिछले डेढ़ साल में हुए गहन अनुभवों और उनसे जन्मे संवादों को ध्यान में नहीं रख पाती जिन्होंने स्कूलों और शिक्षा, दोनों को नई दिशाओं में मोड़ दिया है। सुझाव आ रहे हैं कि टेक्नोलॉजी का अधिक इस्तेमाल किया जाए और ऐसे शिक्षा तंत्र का रुख किया जाए जो टेक्नोलॉजी से ज़्यादा जुड़ा हो। ऐसे सुझाव भी आए हैं कि उन विद्यार्थियों को, जो उन्नत अधिगम (advanced learning) के लिए प्रयासरत हैं, उन विद्यार्थियों से अलग कर देना चाहिए जो सीखने या अधिगम के कुछ बुनियादी अंशों यानी न्यूनतम आवश्यकता से ही सन्तुष्ट हो जाएँगे। ये और ऐसे कई दूसरे कारक हैं, जिनके कारण हमें 'न्यू नॉर्मल' के बारे में बात करनी ही चाहिए ताकि हम इस बहाव, बदलाव, सांविधानिक प्रतिबद्धताओं को सुनिश्चित करने के संघर्षों और उन्हें बनाए रखने के लिए आवश्यक प्रक्रियाओं को लेकर जागरूक रह सकें। एक समाज के रूप में हम जो दबाव महसूस करते प्रतीत हो रहे हैं, बढ़ती असमानताओं के कारण जो कठिनाइयाँ बढ़ रही हैं और हमारे रहने व संसाधनों का इस्तेमाल करने के तरीक़ों की जो अस्थाई प्रकृति है — इन सब वजहों से भी हमें न्यू नॉर्मल के बारे में सोचना ही चाहिए। और हमें यह एहसास भी हो सकता है कि इस न्यू नॉर्मल की मूल बातें सार्वजनिक चर्चा में एक लम्बे समय से मौजूद हैं और बस कुछ मूलभूत सिद्धान्त ही हैं जिन्हें वर्तमान समय के सन्दर्भ में वापस से दोहराया जा रहा है।

कोविड-19 का अनुभव कई अलग-अलग तरीक़ों से तबाही वाला रहा है। यह अभी ख़त्म नहीं हुआ है और यह स्पष्ट नहीं है कि हम इससे पूरी तरह से छुटकारा कब तक पा पाएँगे या पाएँगे भी कि नहीं। यह घट तो रहा है, लेकिन इसके वापस लौटने का डर बना हुआ है और इस डर ने हमें कुछ अपरिचित तरीक़ों से बदल दिया है। जहाँ हम सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक सम्मेलनों को अपरिहार्य मानकर देखते हैं, वहीं स्कूलों के खुलने का विषय पीछे ही छूटा हुआ है। कई जगहों पर बच्चे जोखिम उठाते हुए पहले से ज़्यादा बाहर निकलने लगे हैं। आपको मैदानों में खेलते हुए बच्चों और युवाओं की बड़ी संख्या दिख सकती है। पर कई लोगों के पास यह मौक़ा नहीं है, वे बहुत ही सीमित बाहरी मेलजोल के साथ अपने घर में रहने को विवश हैं। बच्चों और उनकी शिक्षा के सन्दर्भ में हमारे सामने कई सवाल और काफ़ी कम चुनाव और विकल्प हैं। पिछला डेढ़ साल एक अलग अनुभव रहा है। बच्चों को तनावों का सामना करना पड़ा है और कइयों को अत्यधिक तंगी, विस्थापन और उससे भी बदतर यानी परिवार में बीमारी या मौत तक का सामना करना पड़ा है। अभी यह नहीं कहा जा सकता कि पिछले साल के अनुभव ने उन पर क्या प्रभाव डाले हैं और जब तक सामान्यता का आभास नहीं लौटने लगता, तब तक पता नहीं और कौन-सी स्थितियाँ सामने आएँगी। यह कहना भी मुश्किल है कि उन ढेर सारे बच्चों पर इस महामारी का क्या स्थाई असर होगा जिनके परिवार हमेशा से ही संघर्ष करते आए हैं।

इसी समझ के साथ हमें उस आने वाली पीढ़ी के विकास की राह के बारे में सोचना चाहिए, जो कि भविष्य को बसाएगी और सम्भालेगी भी। यह राह होनी चाहिए उनकी शिक्षा की, उन्हें उनके बचपन को फिर से खोजने में मदद करने की, घबराहट के भाव को कम करने की और उन्हें उनके संज्ञानात्मक कौशल व ज्ञानाधार को इस तरह बनाने में मदद करने की कि वे अपने जीवन में आने वाली मुश्किलों का सामना कर पाएँ और इस तरह सशक्त हो सकें जो सबके लिए फ़ायदेमन्द हो, पर्यावरण और धरती समेत।

वैश्विक महामारी के बीच जीना

इस वैश्विक महामारी के दौरान बच्चों तक पहुँचने और उनके साथ जुड़ने के लिए कई तरह के अलग-अलग प्रयास किए गए थे। कार्यक्रमों के इस विस्तार में कई लिहाज़ों से अलग-अलग केन्द्र-बिन्दु थे जैसे — उन बच्चों के सन्दर्भ में जिन तक पहुँचने के प्रयास किए गए और पहुँचा जा सका, उन तरीक़ों के सन्दर्भ में जिनके द्वारा उन तक पहुँचा गया और उस विषयवस्तु के सन्दर्भ में जिसके सहारे उन तक पहुँचा गया।

जब हम धीरे-धीरे एक ऐसी स्थिति की तरफ़ लौटने की उम्मीद करते हैं जहाँ *कोविड-19* का डर कुछ हद तक या काफ़ी हद तक कम हो जाएगा और हम उस दुनिया के बारे में सोचते हैं

जो हम बनाएँगे, तो हमें बच्चों को और संविधान की प्रस्तावना में हमारे द्वारा किए गए संकल्पों को ध्यान में रखना होगा। इन दोनों ही के बारे में हम आसानी से भूल सकते हैं क्योंकि रोज़ी-रोटी की चुनौतियाँ और स्वास्थ्य से जुड़ी निरन्तर चिन्ताएँ हमें अभी भी सता रही हैं। यह पूर्वानुमान लगाना सुरक्षित होगा कि दुनिया कम-से-कम मध्यम से लघु अवधि (यानी कुछ पीढ़ियों तक) में तो पहली लहर के पूर्व के दिनों में शायद नहीं लौटेगी। तो समायोजन के नए मानदण्ड और नए तरीक़े विकसित होंगे। इस 'नॉर्मल' (सामान्य अवस्था) के तत्व क्या होने चाहिए और इसमें बच्चों की शिक्षा के लिए ही नहीं बल्कि उनकी ज़िन्दगी के लिए क्या बातें शामिल होनी चाहिए?

निश्चित रूप से, हमें यह एहसास तो है कि पिछले एक साल या और अधिक समय (यह अवधि बढ़ भी सकती है) से स्कूल नहीं जा पाए बच्चे उन चीज़ों को भी भूल गए हैं जो उन्हें पता थीं। ऐसे अध्ययन हैं जो दर्शाते हैं कि इस वैश्विक महामारी के दौरान, स्कूल में जो कुछ भी ज़रूरी और प्रासंगिक माना जाता है उसके सीखने के स्तरों में बच्चों में महत्त्वपूर्ण गिरावट आई है। जिस तरह से स्कूल सीखने को लेकर व्यवहार करते आए हैं यानी 'ज्ञान' का नाम देकर केवल जानकारियों के टुकड़े सौंप देना, यह साफ़ कर देने की ज़रूरत है कि बच्चे जिन स्तरों तक पहुँच चुके थे, उसमें आई स्पष्ट गिरावट से हम कैसे निपटना चाहते हैं।

इस दौरान बच्चों के साथ काम करने की जो बहुत-सी कोशिशें हुईं उनमें से एक कोशिश टेक्नोलॉजी को एक प्रमुख वाहन के रूप में उपयोग करने की रही है। टेक्नोलॉजी तक पहुँच न बना पाने वाले बच्चों के लिए मोहल्ला कक्षाएँ शुरू करने के प्रयास कहीं-कहीं ही हुए और मुख्य रूप से ये कुछ ग़ैर-सरकारी शिक्षा संस्थाओं द्वारा किए गए थे। ज़्यादा ध्यान तो टेक्नोलॉजी द्वारा संचालित कार्यक्रमों पर ही था और बच्चों के लिए सॉफ्टवेयर बनाने वाले विभिन्न चैनल और संगठन इस दौर में ख़ूब फले-फूले। चूँकि ये सब बाज़ार द्वारा संचलित थे तो स्पष्टतः इनका लक्ष्य अभिजात्य वर्ग था और उनकी रुचियों व अनुभव इनमें प्रतिबिम्बित हो रहे थे।

पृष्ठभूमि

बच्चों की लम्बी-लम्बी दूरियाँ तय करने वाली मर्मभेदी छवियाँ पहले ही भुलाई जा चुकी हैं। वृहत्तर विमर्श में इस तथ्य पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा कि कई बच्चों को उन सदमों से बाहर निकलने में लम्बा समय लगेगा जिनसे वे गुज़रे हैं। बहुत-से बच्चों का पता लगाकर और उन्हें बचाकर स्कूल में वापस लाना होगा। स्कूल, बच्चों और उनके सीखने की अब कभी-कभार बात होती है। स्कूल फिर से खोलने को लेकर जो मुख्य चिन्ता है वह इस बात की है कि बच्चों ने पर्याप्त सीखा नहीं है और कुछ ऐसा रास्ता सोचने की ज़रूरत है जिससे जो सीखना था उसे कम-से-कम समय में और जल्दी-से-जल्दी पूरा किया जा सके। लेकिन इससे पहले कि हम उस गणित, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, पढ़ने और लिखने के बारे में सोचें जिसे बच्चों ने अपनी पाठ्यपुस्तकों से खोया है, हमें ऐसी कई और ज़रूरी चीज़ों के बारे में सोचना चाहिए जो बच्चों ने खोई हैं। हो सकता है कि उन्होंने बहुत-सी चीज़ें खोई हों और बहुत गहन अनुभव प्राप्त किए हों। अब सवाल यह है कि स्कूल और समाज इस बारे में क्या करने वाला है? चूँकि आजीविकाओं में कोई सुधार नहीं हुआ है और महामारी बनी हुई है, इसलिए बच्चों के लिए कई वास्तविकताएँ बदतर हो गई हैं। जो स्थिति पहले थी वह स्वीकार्य नहीं थी और उसने आर्थिक व सामाजिक तौर से कमज़ोर तबक़ों के बच्चों को न सिर्फ़ नुक़सान पहुँचाया बल्कि उन्हें शिक्षा व्यवस्था से बाहर हो जाने की कगार पर ला दिया और ऐसे लगभग सभी बच्चे अपनी शिक्षा के किसी-न-किसी चरण में इस स्थिति से गुज़र चुके हैं। हमें यह ध्यान में रखने की ज़रूरत है कि अब तो ये सम्भावनाएँ भी इनमें से कई परिवारों और बच्चों के लिए उपलब्ध नहीं होंगी। महामारी के बाद की शिक्षा के भविष्य के बारे में सोचने की प्रक्रियाओं में इन चिन्ताओं को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

महामारी के दौरान शिक्षा के अनुभवों के विश्लेषण से हमें इस बारे में सोचने में मदद मिलनी चाहिए कि 'न्यू नॉर्मल' क्या होना चाहिए। शिक्षा व्यवस्था अत्यधिक असमानता और एकतरफ़ा प्राथमिकताओं से ग्रसित रही है। इस व्यवस्था की संस्कृति और दिशा अत्याधिक चिन्तित अभिभावकों के एक समूह की व्याकुलताओं के द्वारा नियंत्रित रही है। ये अभिभावक व्यवस्था और अपने बच्चों, दोनों पर ही दबाव बनाते हैं, बच्चों को प्रतिस्पर्धा करने के लिए उकसाते हैं, उन्हें सीखने और सफल होने के लिए हर तरह की सामग्री व साधन उपलब्ध कराते हैं और यह अपेक्षा करते है कि बच्चे तेज़ और बड़ी उपलब्धियों के साथ उल्लेखनीय नतीजे देंगे। वे ऐसी अपेक्षाओं के लिए सारे संसाधन जुटाने में समर्थ होते हैं जो अधिकांश दूसरे लोगों के लिए प्राप्त करना मुश्किल होती हैं। एक अत्यधिक स्तरीकृत शिक्षा व्यवस्था में, अलग-अलग बच्चों को प्राप्त विविध तरह की सुविधाएँ, उन बच्चों के सीखने के मौक़ों को भी काफ़ी अलग-अलग बना देती हैं। सीमित साधनों वाले बच्चे जिस बाधा के साथ शुरुआत करते हैं, उसमें वे ख़ुद को घिरा हुआ महसूस करते हैं और घबरा जाते हैं। ऐसे ज़्यादातर मामलों में, इन बच्चों के अभिभावकों के पास समय, संसाधन, चाह के साथ ही यह आत्मविश्वास भी नहीं होता कि उनके बच्चे सीखने में

आ रही बाधाओं को पार कर सकते हैं या वे अपनी शिक्षा का उपयोग कर सकते हैं।

हक़ीक़त यह है कि बजाय इसके कि स्कूलों में विभिन्न पृष्ठभूमियों के बच्चों को एक साथ लाया जाए ताकि उनका आपसी संवाद व मेलजोल हो और वे एक-दूसरे की ज़िन्दगियों के बारे में जान सकें और उनमें से कुछ जिस स्थिति में जी रहे हैं, उससे समानुभूति महसूस कर पाएँ, हमने स्तरीकृत स्कूल बना रखे हैं जिनमें से बहुत-से ऐसे हैं जिनके भीतर पृथकता और बढ़ती जा रही है। स्कूलों में एक और तरह का पृथक्करण उभरकर आ रहा है, जिसके पीछे व्यवस्था की उन बच्चों को वर्गीकृत और श्रेणीबद्ध करने की इच्छा है जो बाक़ी बच्चों की तुलना में उच्च क्षमता के सोचने के कौशल विकसित करने के क़ाबिल हों।

इस तरह जिन बच्चों को वर्गीकृत किया गया है, उन्हें भिन्न पाठ्यचर्याओं द्वारा पढ़ाया जाएगा और इस कारण से कई बच्चे सीमित महत्त्वाकांक्षाएँ ही रख पाएँगे। यह एक तरीक़े से व्यवस्था की नीयत (जो ज़मीन पर पहले से मौजूद है) की औपचारिक पुष्टि है। इसका मतलब है कि अब बच्चों को उच्च-प्राथमिक स्तर पर भी अलग किया जा सकता है, जिनमें एक तरफ़ वे होंगे जो 'हल्की' पाठ्यचर्या के तहत पढ़ेंगे और बाद में व्यावहारिक विशेषताओं व कौशल विकास कार्यक्रमों की ओर बढ़ जाएँगे, वहीं दूसरी तरफ़ वे बच्चे होंगे जो 'शैक्षिक' पाठ्यचर्या के तहत पढ़ेंगे ताकि उच्च शिक्षा के लिए प्रयास कर पाएँ। इस वर्गीकरण के नतीजों की कल्पना करना आसान है क्योंकि हाथों से होने वाले काम के लिए पारिश्रमिक देने के तरीक़े एवं इसे अकुशल और निम्न स्तर के काम के रूप में देखने के नज़रिए में कोई सुधार नहीं हुआ है।

एक ओर जहाँ महामारी ने चौंका देने वाली विषमताओं को सामने ला खड़ा किया, वहीं कुछ समय के लिए इसने प्रतिस्पर्धा की बजाय सह-अस्तित्व और करुणा के महत्त्व को भी दिखाया। वे लोग जिन्हें 'दूसरा' और इसलिए असमान माना जाता है, उनकी पीड़ा के लिए अत्यधिक तिरस्कार और उपेक्षा के भावों के साथ ही उनकी सलामती की चिन्ता भी थी। उनके सहयोग और सामूहिक कार्रवाई के लिए कुछ सामुदायिक प्रणालियाँ भी स्थापित की गईं। और कुछ समय के लिए ही, पर उनके द्वारा किए जाने वाले तथाकथित 'अकुशल घरेलू काम' के महत्त्व और ज़रूरत का एहसास भी किया गया। हमारे लिए चुनौती यह है कि इसे एक ऐसी सीख बनाया जाए जो शिक्षा एक सामान्य संवेदनशीलता के रूप में पैदा करती है। इसलिए, न्यू नॉर्मल के लिए मुख्य बात यही है कि इस तरह की शिक्षा की प्रक्रियाओं को स्थापित किया जाए जो अधिक न्यायपूर्ण, अधिक समावेशी, अधिक सहभागिता-आधारित हो और ऐसे व्यक्तियों के विकास पर ध्यान देती हो जिनमें दया व मानवता हो और जो संविधान के मूल्यों से प्रेरित हो। यह महामारी सम्पन्न और वंचित लोगों के बीच मौजूद जिस असाधारण असमानता को सामने लाई है, उसके स्थापित व पुख़्ता होने की सम्भावना है, क्योंकि संसाधनों और सम्भावनाओं तक पहुँच और कम हो जाने के कारण वंचितों के लिए ख़ुद को शिक्षित करने के विकल्प और कम हो जाते हैं। शुरुआत से ही 'अकादमिक शिक्षा' के अवसरों के लिए एक ज़रूरी तत्व के रूप में प्रदर्शन पर ज़ोर लगातार बढ़ता जा रहा है। इससे न केवल अर्थव्यवस्था में, बल्कि विचार बनाने वाले विश्लेषणों और साहित्य में भी सम्भावित अवसर बाधित होंगे। विद्यार्थियों की छँटाई की प्रक्रिया को निष्पक्ष और न्यायसंगत माना जाएगा क्योंकि वह योग्यता (मेरिट) की वर्तमान धारणा पर आधारित होगी। खेलों में पदकों और आकर्षक अवसरों के अतिप्रचार से भी ऐसी ही प्रक्रियाएँ उत्पन्न हो सकती हैं जो सक्षम अभिजात वर्ग को लाभ पहुँचाती हों। इस प्रकार न्यू नॉर्मल या तो ऐसी धारणाओं, विचारों के वस्तुकरण का रूप ले सकता है या फिर न्यायोचित सम्भावनाओं की दिशा में बढ़ने के एक स्पष्ट प्रयास के रूप में उभर सकता है। इस सम्भावना का बोध हमसे यह माँग करता है कि हम न्यू नॉर्मल के बारे में एक चुनाव करें।

न्यू नॉर्मल के बारे में एक और महत्त्वपूर्ण चिन्ता शिक्षा के संज्ञानात्मक पहलू को केन्द्र-बिन्दु में समायोजन करने के बारे में भी है। पिछले 20 वर्षों में, पाठ्यक्रम में शामिल सामग्री और उसके अनुसार विद्यार्थियों के प्रदर्शन करने की क्षमता के बारे में चिन्ता व्यक्त की जाती रही है। जानकारी का भण्डार होने की बजाय क्षमताएँ विकसित करने की आवश्यकता की वक़ालत सभी संवादों के ठण्डे बस्ते में रही है और विस्तृत रूप से परिभाषित किए गए परिणामों के मुताबिक़ विद्यार्थियों के आकलन और प्रदर्शन पर नज़र बनाए रखना ही केन्द्रीय तत्व रहा है। आकलन, आदर्श रूप से परिभाषित कुछ अपेक्षाओं के सामने विद्यार्थी को मापने का एक प्रयास है। इस वास्तविकता के बावजूद कि अधिकांश बच्चे उन क्षमताओं को हासिल करने और सीखने के अपेक्षित चरणों के अनुसार प्रदर्शन करने में सक्षम नहीं हैं, यह बड़ी अजीब बात है कि इन अपेक्षाओं को एक उम्र के लिए मानक और उपयुक्त मानकर स्वीकार कर लिया गया है। और जब स्कूल खुलते हैं, तो हम विद्यार्थियों के साथ वह सब पूरा करने के लिए जल्दबाज़ी न करें जो उन्होंने उस अवधि में किया होता जब स्कूल बन्द थे। विद्यार्थी न केवल जो जानते थे और कर सकते थे, उसमें कुछ नया जोड़ नहीं पाए हैं, बल्कि वे जो कुछ जानते थे उसमें से भी बहुत कुछ भूल गए हैं।

शिक्षा में टेक्नॉलोजी

वर्तमान स्थिति में जहाँ कि समाज स्तरीकृत है, शिक्षा में टेक्नॉलोजी के उपयोग के मुद्दे पर ध्यानपूर्वक विचार करना होगा। यदि संसाधन चिन्ता का विषय नहीं हैं, तो प्रश्न बन जाता है : क्या यह सुझाव देने के लिए पर्याप्त आधार हैं कि टेक्नॉलोजी काफ़ी हद तक सीखने में मदद करती है? क्या यह बेहतर अनुपूरक सहयोग के रूप में आगे बढ़ने की दिशा है? यह बहस इस दृष्टिकोण से अलग है कि इस वास्तविकता को देखते हुए कि महामारी ख़त्म नहीं हो रही है और इस तरह के और अधिक संकट उत्पन्न हो सकते हैं, अधिक-से-अधिक टेक्नॉलोजी-केन्द्रित सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं की तरफ़ बढ़ना उचित है। इस तरह की प्रक्रियाओं की बेहतर निगरानी भी की जा सकती है और इनमें शिक्षकों के लिए व इससे भी महत्त्वपूर्ण बात है कि ख़ुद बच्चों के लिए केन्द्रीय मार्गदर्शन उपलब्ध रहा है।

पहले से ही और ज़्यादा टेक्नॉलोजी व सॉफ्टवेयर के विकास के साथ-साथ इन तक पहुँच बढ़ाने की माँग बढ़ती जा रही है। हमें टेक्नॉलोजी के उपयोग के सवाल के साथ-ही-साथ अनजाने में यह मार्ग जिस तरह की दिशाओं की तरफ़ ले जाएगा, इस पर भी विचार करने की आवश्यकता है। हम जानते हैं कि लगभग हर जगह बच्चों ने ऑनलाइन कक्षाओं को अस्वीकार कर दिया है और स्कूलों में लौटने की उत्सुकता दिखाई है। हमने टेक्नॉलोजी के बढ़ते उपयोग की वजह से लोगों में बढ़ते विघटन और ग़लत सूचनाओं के प्रसार को देखा है जिसमें बाँटने वाले और सामाजिक रूप से हानिकारक विचार भी शामिल होते हैं। जैसे-जैसे मानवीय सम्पर्क और मेलजोल के अनुभव कम हो रहे हैं, वैसे-वैसे पृथकता और अविश्वास के प्रसार के ख़तरे बढ़ते रहेंगे। कोई भी नया नियम जो किसी भी कारण से मानवीय सम्पर्क कम करने को एक बुनियादी प्रक्रिया के रूप में लेकर आता है, अच्छा विकल्प नहीं है। टेक्नॉलोजी का न्यायपूर्ण ढंग से उपयोग करने में कोई बुराई नहीं है, लेकिन यह उस स्कूल के अतिरिक्त होना चाहिए जिससे हम भलीभाँति परिचित हैं, हालाँकि वह स्कूल अधिक सहयोगात्मक होना चाहिए जो साथ मिलकर सीखने को बढ़ावा देता हो और प्रतिस्पर्धा व दबाव को कम करता हो। शिक्षा व्यवस्था दावों और दबावों को तब तक कम नहीं कर सकती जब तक कि उपलब्ध विकल्प अधिक न्यायपूर्ण न हों और छँटनी की प्रक्रिया प्रारम्भिक स्तर पर ही शुरू न हो जाए।

सवाल यह है कि क्या हम बच्चों की लगातार तुलना करने के लिए केन्द्रीय रूप से परिभाषित सीखने के परिणामों और मानकों पर नज़र रखने वाले तकनीकी उपकरणों को मज़बूत करें या हम अपेक्षाओं को निर्धारित करने की समुदाय और शिक्षक-नीत प्रक्रियाओं की तरफ़ बढ़ें? मानवीय सम्पर्क के बदले टेक्नॉलोजी के उपयोग की जो चाह है, उसकी वजह से यह अत्यावश्यक होगा कि हम मानवीय सम्पर्क और मेलजोल के महत्त्व को पहचानें और उसे मुमकिन करें। टेक्नॉलोजी, जो कि पर्याप्त निवेशों के बाद, आज की तुलना में बेहतर हो सकती है, के अत्यधिक इस्तेमाल की तरफ़ जाना बेहद आसान होगा। पिछले 20 वर्षों में ऑनलाइन अधिगम में काफ़ी निवेश हुआ है और महामारी ने इसे कई गुना बढ़ा दिया है। सरकारी स्कूलों में जाने वाले वंचित पृष्ठभूमि के बच्चों की चिन्ताएँ महँगे-से-महँगे प्राइवेट स्कूलों में जा रहे बच्चों के माता-पिता की चिन्ताओं से बहुत अलग हैं। आर्थिक रूप से कमज़ोर पृष्ठभूमियों के बच्चे चाहेंगे कि स्कूल जल्दी खुलें और नियमित रूप से जारी रहें। जहाँ अभिजात वर्ग स्कूल को मिश्रित तरीक़े से चलता हुआ देख रहा होगा और उसका झुकाव टेक्नॉलोजी द्वारा समर्थित व्यक्तिगत शिक्षा की ओर होगा, वहीं ग़रीब ग्रामीण बच्चों के हित स्कूलों के खुलने में हैं। झुग्गी-झोपड़ी के बच्चों के लिए भी पूरी सावधानियों के साथ किसी-न-किसी रूप में नियमित तौर से लगने वाले बस्ती-स्कूल के अलावा कोई विकल्प नहीं है। अल्पावधि में हम जिन समाधानों की तलाश कर रहे हैं, वे दीर्घकालिक चिन्ताओं से और हमारे उन नज़रियों से जुड़ते हैं कि शिक्षा की संरचना किस तरह से होनी चाहिए।

सारांश

महामारी के घट जाने के बाद बच्चों की शिक्षा के पुनर्निर्माण का कार्य चुनौतियों से भरा है। एक बड़ा ख़तरा है कि बड़ी संख्या में बच्चे और अधिक हाशियाकृत हो सकते हैं व शिक्षा के कुछ ख़ास अवसरों को पूरी तरह से खो सकते हैं, जिससे कि समाज में कुछ ख़ास भूमिकाएँ और पद प्राप्त करने की उनकी सम्भावनाएँ भी समाप्त हो जाएँगी। हमें सभी बच्चों को एक न्यायसंगत शिक्षा प्रणाली में शामिल करने का वादा पूरा करने की ज़रूरत है, जिसके ज़रिए एक लोकतांत्रिक और समान आर्थिक अवसरों वाली स्थिति निर्मित हो सके जिससे धीरे-धीरे सामाजिक मेलजोल और भाईचारा बढ़ सके। यह तभी किया जा सकता है जब इस बात को सुनिश्चित करने का सम्पूर्ण प्रयास किया जाए कि वंचित पृष्ठभूमि के बच्चों को वे सभी अतिरिक्त सुविधाएँ मिलें जिनकी ज़रूरत उन्हें संसाधनों की अथाह कमी की भरपाई के लिए होगी। साथ ही सामाजिक और आर्थिक रूप से सम्पन्न बच्चों के साथ बराबरी से चलने के उनके संघर्ष में उन्हें सहयोग की आवश्यकता होगी।

शिक्षा की पुनर्रचना को यह स्वीकार करना चाहिए कि टेक्नॉलोजी ज़्यादा-से-ज़्यादा एक सहायक तत्व हो सकती है और शिक्षा का बड़ा अंश तो शिक्षकों और साथियों के साथ बातचीत, सम्पर्क के माध्यम से, पाठ्यपुस्तकों जैसी पठन सामग्री और अन्य संसाधनों का उपयोग करके ही प्राप्त किया जा सकता है। 'न्यू नॉर्मल' को तभी चुना जाना चाहिए, जब

हम इसके लिए रचनात्मक रूप से काम करें। हम सुनिश्चित करें कि यह शिक्षा प्राप्त करने और सामाजिक व आर्थिक भूमिकाएँ चुनने के मौक़ों की मौजूदा असमानताओं को न बढ़ा रहा हो। इसके लिए पूरी तरह से बदली हुई धारणाओं और मान्यताओं की आवश्यकता होगी और यह जल्दबाज़ी में नहीं हो सकता। लेकिन हमारे प्रयास को इस लक्ष्य की ओर सचेत रूप से बढ़ना होगा, बजाय कि बढ़े हुए स्तरीकरण और लगातार बढ़ते फ़ासलों को अपना सहयोग देने के और उन्हें स्वीकार करने के।



हृदय कान्त दीवान 40 से अधिक वर्षों से विभिन्न क्षमताओं में शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु के 'अनुवाद पहल' के साथ सम्बद्ध हैं। वे एकलव्य, भोपाल के संस्थापक सदस्य हैं और विद्या भवन सोसाइटी, उदयपुर के शैक्षिक सलाहकार हैं। विशेष रूप से, वे शैक्षिक नवाचार और राज्यों के शैक्षिक ढाँचों के सुधार के प्रयासों से जुड़े रहे हैं। उनसे hardy@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** सिमरन साध